माइक्रोप्लास्टिक : जीवनदायी जल में छिपा अदृश्य संकट

डॉ. प्रविण रंगराव पाटील, आसिफ, डॉ. मनीष कुमार नेमा
एवं डॉ. ए. आर. सेन्थिल कुमार
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान,
रुड़की।

अदृश्य संकट का परिचय

जल संसाधनों की शुद्धता अब एक भ्रम बनती जा रही है। जीवन का आधार माना जाने वाला जल अब अनेक अदृश्य विषाक्ततों से भरा हुआ है, जिसमें माइक्रोप्लास्टिक मुख्य रूप से सम्मिलित है। 1–माइक्रोन से 5–मिमी तक के आकार वाले ये अघुलनशील सिंथेटिक कण अब केवल नदियों और समुद्रों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि घरेलू जल आपूर्ति प्रणालियों, वर्षाजल संग्रहण टैंकों और मानव अंगों में भी पाए जा रहे हैं। इस संदूषण की जड़ें हमारी दैनिक उपयोग की वस्तुओं जैसे पॉलीविनाइल क्लोराइड (पीवीसी) पाइप, प्लास्टिक की टंकियाँ, और असुरक्षित छतों में छिपी हैं। सूर्य की पराबैंगनी किरणें, वर्षा और वायुमंडलीय रासायनिक प्रतिक्रियाएँ, इन्हें धीरे–धीरे तोड़कर सूक्ष्म प्लास्टिक में बदल देती हैं, जो वर्षाजल के साथ संग्रहण टैंकों में एकत्रित हो जाते हैं। सबसे खतरनाक पहलू यह है कि ये कण केवल भौतिक रूप से ही हानिकारक नहीं हैं, बल्कि विषाक्त वाहक की तरह कार्य करते हैं। ये अपने साथ भारी धातुएँ (जैसे सीसा, पारा, आदि) और हार्मोन–विघटक रसायन जोड़ लेते हैं। जब यह विषाक्तता जल के माध्यम से शरीर में प्रवेश करती है, तो यकृत, फेफड़े, प्रजनन प्रणाली, और तंत्रिका तंत्र पर गहरा असर डालती है। अब शहरी क्षेत्रों में लोगों के फेफड़ों में भी माइक्रोप्लास्टिक पाए जा रहे हैं । यह संकेत है कि संकट केवल जल मार्ग से नहीं, बल्कि वायु के माध्यम से भी हमारे शरीर तक पहुँच रहा है। स्थिति तब और गंभीर हो जाती है जब पारंपरिक समाधान ही समस्या का हिस्सा बन जाएं। उदाहरणार्थ, वर्षाजल संचयन को पर्यावरणीय रूप से उत्तम विकल्प माना जाता है, लेकिन यदि यह प्लास्टिक टंकियों, घिसी छतों या पीवीसी पाइपिंग पर आधारित हो, तो वह स्वयं प्रदूषण का स्रोत बन जाता है। हाल ही में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि वर्षाजल में माइक्रोप्लास्टिक की व्यापक उपस्थिति है।

भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, पटना द्वारा 2023 में जर्नल ऑफ हैजर्डस मैटेरियल्स में प्रकाशित अध्ययन में शहरी क्षेत्रों में प्रति वर्ग मीटर प्रतिदिन 1959.6 $\pm$ 205 माइक्रोप्लास्टिक कण पाए गए, जो चीन के शंघाई (3261.22 $\pm$ 2847.99 कण) के बाद दूसरा सर्वाधिक आंकड़ा है। यह भारत में वायुमंडलीय माइक्रोप्लास्टिक पर पहला व्यापक अनुसंधान है, जो इस मिथक को तोड़ता है कि वर्षाजल स्वाभाविक रूप से शुद्ध होता है। दक्षिण भारत की कावेरी नदी पर 2022 में मानसून के दौरान किए गए अध्ययन में सतही जल में प्रति लीटर 43–69 कण दर्ज किए गए। इनमें मुख्यतः वस्त्रों से निकले रेशे, शहरी अपशिष्ट और औद्योगिक स्रोतों से आने वाले कण शामिल थे। SEM (स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप) और FTIR (फूरियर ट्रांसफॉर्म इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी) विश्लेषण से पता चला कि इन कणों की सतह पर सिलिकॉन, टाइटेनियम, मैग्नीशियम, कॉपर और टैंटलम जैसे तत्वों का जमाव हुआ है। उत्तर भारत में दिल्ली के नजफगढ़ नाले और यमुना नदी पर हुए अध्ययन में पाया गया कि मानसून–पूर्व अवधि में नजफगढ़ नाले में 771 कण/मी^{3} और मानसून–पश्चात 343 कण/मी^{3} पाए गए। द्वितीयक नालों में मानसून–पूर्व 100–4,300 कण/मी^{3} और मानसून–पश्चात 100–6,700 कण/मी^{3} तक की मात्रा दर्ज की गई, जो मुख्यतः प्लास्टिक पैकेजिंग के विघटन से उत्पन्न खंड रूप में थे। तेलंगाना और आंध्र प्रदेश में गोदावरी नदी प्रणाली पर वर्ष 2025 के अध्ययन में पाया गया कि पश्चिम गोदावरी के सतही जल में 330 माइक्रोप्लास्टिक कण (15 नमूनों में) और जल शोधन संयंत्रों में 121 कण (6 नमूनों में) मौजूद थे। ये कण मुख्यतः नीले और पारदर्शी रेशे थे, जो 500 माइक्रोमीटर से छोटे थे और पॉलीप्रोपिलीन, पीवीसी, नायलॉन तथा पीईटी से बने थे। शोधित जल में 3,000 माइक्रोमीटर से बड़े कण भी पाए गए, जो दर्शाता है कि पारंपरिक जल शोधन संयंत्र इस प्रदूषक को पूर्णतः हटाने में अक्षम हैं। मानसून के दौरान जब नदियों में अपशिष्ट प्रवाह, शहरी अपवाह और बाढ़ के कारण प्रदूषण बढ़ता है, तब यही जल भूजल पुनर्भरण के दौरान भूमि में समाकर भारी धातुओं और आर्सेनिक जैसे तत्वों के साथ माइक्रोप्लास्टिक को भी भूजल में मिला देता है।

स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत निर्मित शौचालयों से निकलने वाला अपशिष्ट जब प्लास्टिक पाइपिंग प्रणाली से गुजरता है, तो पीवीसी और अन्य प्लास्टिक पाइपों से माइक्रोप्लास्टिक का रिसाव अत्यधिक बढ़ जाता है। नगरपालिका जल प्रणालियों में प्लास्टिक पाइप और फिटिंग के विघटन से माइक्रोप्लास्टिक की उपस्थिति और बढ़ जाती है। यह धीमा किंतु स्थायी प्रदूषण अंततः सिंचाई, पेयजल और भोजन के माध्यम से हमारी दिनचर्या का हिस्सा बन जाता है, जिससे मानव स्वास्थ्य के लिए दीर्घकालिक जोखिम उत्पन्न होता है। यह संकट अब केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं रहा वरन् यह सीधे जन स्वास्थ्य, भविष्य की खाद्य सुरक्षा और मानव अस्तित्व की स्थिरता से जुड़ी समस्या है। यदि इसे गंभीरता से न लिया

गया तो यह धीरे–धीरे एक ऐसी महामारी का रूप ले सकता है, जिसकी गूँज आने वाली पीढ़ियों की सेहत पर प्रतिध्वनित होती रहेगी।

प्लास्टिकः वरदान या विनाश का बीज

मिट्टी, काँच, धातु, कपड़ा और लकड़ी जैसे पारंपरिक पदार्थों के सस्ते, टिकाऊ और लचीले विकल्प के रूप में प्लास्टिक ने आधुनिक जीवन में क्रांति ला दी है। इसकी बहु–उपयोगिता और कम लागत ने इसे हर क्षेत्र (घर, उद्योग, परिवहन, चिकित्सा और पैकेजिंग) में अपरिहार्य बना दिया है। लेकिन यह सुविधा एक गंभीर पर्यावरणीय कीमत के साथ आई है, क्योंकि प्लास्टिक जैविक रूप से नष्ट नहीं होता है। माइक्रोप्लास्टिक मुख्यतः दो रूपों में पाए जाते हैंः

प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक–जो जानबूझकर छोटे रूप में बनाए जाते हैं, जैसे सौंदर्य प्रसाधनों में प्रयुक्त प्लास्टिक बीड्स, डिटर्जेंट में सूक्ष्म कण, कच्चे प्लास्टिक के दाने, और सिंथेटिक वस्त्रों से निकले रेशे आदि।

द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक–प्लास्टिक की बड़ी वस्तुओं (बोतलें, थैले, टायर, पैकेजिंग आदि) के धीरे–धीरे विघटन से बनने वाले कण।

माइक्रोप्लास्टिक निरंतर विघटन में धूप, गर्मी, बारिश, घर्षण और सूक्ष्मजीव सक्रिय भूमिका निभाते हैं। वाहनों के टायर घर्षण से प्रतिवर्ष वैश्विक स्तर पर 6 मिलियन टन कण निकलते हैं, जो पर्यावरण में सबसे बड़े माइक्रोप्लास्टिक स्रोतों में से एक है। 6 किलोग्राम कपड़े धोने से लगभग 7 लाख माइक्रोफाइबर निकलते हैं, जिसमें एक्रिलिक कपड़े सर्वाधिक फाइबर छोड़ते हैं। 2022 की प्लास्टिक सूप फाउंडेशन की रिपोर्ट के अनुसार, एक ही कपड़े से 7 लाख माइक्रोफाइबर और ड्रायर से वार्षिक 120 मिलियन कण निकलते हैं। व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों में माइक्रोबीड्स की स्थिति भी चिंताजनक है। बीट द माइक्रोबीड अभियान के अनुसार, भारत में एक फेसवॉश में औसतन 195–10,847 माइक्रोमीटर आकार के माइक्रोबीड्स पाए जाते हैं। अमेरिका में प्रति दिन 8 ट्रिलियन माइक्रोबीड्स जलमार्गों में पहुँचते हैं। प्लास्टिक बोतलों का विघटन समय वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार 450–1,000 वर्ष है, जो पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आज माइक्रोप्लास्टिक का प्रसार वैश्विक हो चुका है। हिंदू कुश हिमालय क्षेत्र में हिमनदों में प्रति लीटर 30–871 तक माइक्रोप्लास्टिक कण पाए गए हैं। तिब्बती पठार के हिमनद हिम में भी 10 माइक्रोमीटर से 500 माइक्रोमीटर तक के कण मिले हैं। पश्चिमी हिमालय की व्यास नदी में भी 46–222 कण/लीटर माइक्रोप्लास्टिक दर्ज किया गया है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन–(OECD) के 2022 के आंकड़ों के अनुसार, 1950 के दशक से अब तक वैश्विक स्तर पर 9.1 अरब टन प्लास्टिक का उत्पादन हुआ है, जिसमें से केवल 9% का पुनर्चक्रण हुआ है। शेष 91% प्लास्टिक जलाया गया, लैंडफिल में डाला गया या सीधे पर्यावरण में फैल गया। 2019 तक 353 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न हुआ, जिसमें से 22% अनियंत्रित तरीके से पर्यावरण में पहुँच गया। लगभग 60% से अधिक प्लास्टिक अभी भी पर्यावरण में मौजूद है और धीरे–धीरे माइक्रोप्लास्टिक/नैनोप्लास्टिक में परिवर्तित हो रहा है।

माइक्रोप्लास्टिक एक उभरता प्रदूषक

जल प्रबंधन का नया युग अब केवल जल की उपलब्धता या पारंपरिक प्रदूषकों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन अदृश्य खतरों पर केंद्रित हो गया है जो खाद्य श्रृंखला और मानव स्वास्थ्य तक गहराई से पहुँच चुके हैं। इनमें सबसे गंभीर चुनौती माइक्रोप्लास्टिक है, जो अब विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा आधिकारिक रूप से 'उभरते हुए प्रदूषक' के रूप में मान्यता प्राप्त है। अनुसंधान से पता चला है कि माइक्रोप्लास्टिक कण 'प्लास्टिस्फीयर' बनाकर ई. कोलाई जैसे रोगजनक जीवों को संरक्षण प्रदान करते हैं और एंटीबायोटिक प्रतिरोधी जीवाणुओं के विकास में योगदान देते हैं। यह समस्या कोविड–19 के बाद स्वास्थ्य प्रणाली पर अतिरिक्त दबाव डाल सकती है। वैश्विक अध्ययनों से स्पष्ट है कि पारंपरिक जल शोधन प्रणालियाँ माइक्रोप्लास्टिक को पूर्णतः हटाने में असमर्थ हैं। 21 अध्ययनों की समीक्षा के अनुसार, द्वितीयक स्तर पर औसतन 88% और तृतीयक स्तर पर 94% माइक्रोप्लास्टिक हटाया जा सकता है। लिथुआनिया के एक अध्ययन में द्वितीयक प्रसंस्करण संयंत्र में केवल 55.4% माइक्रोप्लास्टिक हटाने की दर मिली। यूरोप और उत्तरी अमेरिका के उन्नत संयंत्र 99.9% तक दक्षता दिखाते हैं, जबकि एशिया और ऑस्ट्रेलिया के पारंपरिक संयंत्र केवल 65–66% दक्षता तक सीमित हैं। छोटे कण (विशेषकर < 150 माइक्रोमीटर) अधिकांश शोधन प्रणालियों से बच निकलते हैं।

महासागरों में प्लास्टिक प्रदूषण की स्थिति

महासागर पृथ्वी के जीवन आधार हैं जहाँ 97% जल संग्रहित है, जो जलचक्र और कार्बन अवशोषण नियंत्रित करते है, और एक अरब से अधिक लोगों के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है। प्रतिवर्ष 1.1 करोड़ टन प्लास्टिक महासागरों में पहुँचता है, जो 2040 तक 2.9 करोड़ टन प्रति वर्ष हो सकता है। वर्तमान में महासागरों में 7.5–10 करोड़ टन प्लास्टिक कचरा मौजूद

है। जो समुद्री जीवन और पारिस्थितिक तंत्र के लिए अत्यंत घातक है। एक्सेटर विश्वविद्यालय के अध्ययन में जांचे गए सभी शिशु समुद्री कछुओं के पेट में प्लास्टिक पाया गया। हर वर्ष लगभग 10 लाख समुद्री पक्षी और 1 लाख समुद्री जीव (कछुए, व्हेल, सील आदि) प्लास्टिक प्रदूषण के कारण मर जाते हैं। महासागरों में अनुमानतः 5.25 ट्रिलियन मैक्रो और माइक्रोप्लास्टिक कण तैर रहे हैं, जिनका वजन लगभग 2.5 लाख टन है। महासागर के प्रत्येक वर्ग मील क्षेत्र में औसतन 46,000 प्लास्टिक कण पाए जाते हैं। 'ग्रेट पेसिफिक गार्बेज पैच' (16 लाख वर्ग किमी क्षेत्र) का लगभग 50% कचरा एकल–उपयोग प्लास्टिक है।

प्लास्टिक प्रदूषण की वैश्विक स्थिति

ब्रिटेन में 2024 के आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, लगभग 2.15–2.27 मिलियन टन प्लास्टिक पैकेजिंग कचरा उत्पन्न हुआ, जिसमें से 1.15 मिलियन टन का पुनर्चक्रण किया गया। यह दर्शाता है कि ब्रिटेन में लगभग 50% प्लास्टिक पैकेजिंग का पुनर्चक्रण हो रहा है। मरीन कंजर्वेशन सोसाइटी के 2024 के सर्वेक्षण के अनुसार, ब्रिटेन के समुद्र तटों पर प्रति 100 मीटर औसतन 127 प्लास्टिक वस्तुएं पाई गईं, जो पिछले वर्ष की तुलना में 10% की वृद्धि दर्शाती हैं। हालांकि, प्लास्टिक बैग चार्ज लगाने के बाद समुद्र तटों पर कैरियर बैग की संख्या में 80% की कमी आई है।

अमेरिकी प्लास्टिक्स पैक्ट के 2023–24 के आंकड़ों के अनुसार, अमेरिका में 5.57 मिलियन मीटरिक टन प्लास्टिक पैकेजिंग का उत्पादन हुआ। प्रशासन की गंभीरता को दर्शाते हुए, पर्यावरण संरक्षण संस्थान (EPA) ने नवंबर 2024 में राष्ट्रीय प्लास्टिक प्रदूषण रोकथाम रणनीति जारी की, जिसका महत्वाकांक्षी लक्ष्य 2040 तक प्लास्टिक कचरे के पर्यावरणीय निर्वहन को पूर्णतः समाप्त करना है। यह रणनीति चक्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने, पुनर्चक्रण की दर बढ़ाने और वैकल्पिक सामग्रियों के विकास पर केंद्रित है।

2024 के लीड्स विश्वविद्यालय के व्यापक अध्ययन के अनुसार, भारत विश्व में सर्वाधिक प्लास्टिक प्रदूषण (प्रति वर्ष 9.3 मिलियन टन) उत्पन्न करने वाला देश है। यह नाइजीरिया (3.5 मिलियन टन) और इंडोनेशिया (3.4 मिलियन टन) से दोगुना अधिक है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, 2020–21 में भारत में 4.13 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा आधिकारिक रूप से दर्ज किया गया। भारत में प्रति व्यक्ति प्लास्टिक कचरा उत्पादन लगभग 0.12 किलोग्राम प्रति दिन (43.8 किलोग्राम प्रति वर्ष) है। जैमबेक एवं अन्य के 2015 के अध्ययन के अनुसार, भारत से प्रतिवर्ष लगभग 0.13 से 0.37 मिलियन टन प्लास्टिक समुद्र में पहुँचता है। राष्ट्रीय तटीय अनुसंधान केंद्र के 2022–2025 के सर्वेक्षण से पता चला कि भारतीय तटों पर माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण के मुख्य स्रोत नदी अपवाह और मछली पकड़ने के उपकरण हैं।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की 2018 की रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक स्तर पर प्रति वर्ष 1–5 ट्रिलियन प्लास्टिक बैगों का उपयोग होता है, जो प्रति मिनट लगभग 10 मिलियन बैग के बराबर है। इस विशाल मात्रा का बड़ा भाग अनुचित निपटान के कारण पर्यावरण में पहुँच जाता है। समुद्री पारिस्थितिकी पर प्रभाव की बात करें तो खाद्य और कृषि संगठन के 2017 के अध्ययन से पता चलता है कि समुद्री मछलियों में माइक्रोप्लास्टिक संदूषण की दर क्षेत्रीय रूप से भिन्न है। कुछ नियंत्रित परीक्षणों में तिलापिया मछली में 20 सप्ताह में 268.45 माइक्रोप्लास्टिक कण पाए गए। भारत के संदर्भ में, हाल ही में विशाखापटनम तट पर मछलियों के नमूनों में माइक्रोप्लास्टिक कणों की व्यापक उपस्थिति दर्ज की गई है, जो इस बात का प्रमाण है कि यह समस्या भारतीय तटीय पारिस्थितिकी तंत्र में भी गहराई से जड़ें जमा चुकी है। महासागरों में तैरते प्लास्टिक कचरे की मात्रा इतनी विशाल है कि वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार समुद्री जल में मौजूद प्लास्टिक के सूक्ष्म कण समुद्र के पानी की तुलना में दस लाख गुना अधिक विषाक्त हो सकते हैं। यह स्थिति इस बात को दर्शाती है कि कभी 'चमत्कारी पदार्थ' कहे जाने वाले प्लास्टिक की सुविधाजनक प्रकृति आज हमारे पारिस्थितिकी तंत्र, खाद्य श्रृंखला और मानव स्वास्थ्य के लिए अदृश्य लेकिन गंभीर संकट बन चुकी है।

यदि इस समस्या का समाधान शीघ्र नहीं निकाला गया तो यह केवल पर्यावरणीय आपदा से आगे बढ़कर जन स्वास्थ्य और खाद्य सुरक्षा के लिए स्थायी संकट का रूप ले सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि प्लास्टिक प्रदूषण न केवल स्थानीय बल्कि वैश्विक चुनौती है, जिसके लिए तत्काल और समन्वित कार्रवाई आवश्यक है।

वायुमंडल एवं वर्षा जल में माइक्रोप्लास्टिक

वर्षा, जिसे अब तक शुद्धता का प्रतीक माना जाता था, हाल के वैज्ञानिक शोधों के अनुसार स्वयं प्रदूषण की वाहक बन चुकी है। 2019 में फ्रांस के पायरेनीज पर्वतों में हुए अध्ययन में पाया गया कि उस क्षेत्र में प्रतिदिन प्रति वर्ग मीटर औसतन 365 माइक्रोप्लास्टिक कण जमा हो रहे थे। वहाँ कोई स्थानीय प्रदूषण स्रोत न होने के बावजूद ये कण हवा द्वारा सैकड़ों किलोमीटर दूर स्थित शहरी क्षेत्रों (पेरिस और बार्सिलोना) से आए थे। इसी तरह, 2022 में 'द क्रायोस्फीयर' जर्नल के

एक अध्ययन में अंटार्कटिका के सभी 19 बर्फीले नमूनों में माइक्रोप्लास्टिक की उपस्थिति सिद्ध हुई और औसतन प्रति लीटर पिघली हुई बर्फ में 29 कण पाए गए। 2024–25 की उन्नत इन्फ्रारेड तकनीक से हुए अनुसंधान में रॉस आइस शेल्फ जैसी दूरस्थ जगहों पर प्रति लीटर 73 से 3,099 माइक्रोप्लास्टिक कण दर्ज किए गए। भारत भी इस वैश्विक संकट से अछूता नहीं है। 2023 में भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, दिल्ली सहित कई संस्थानों के अध्ययन में शहरी छतों से एकत्रित वर्षाजल में सिंथेटिक रेशे एवं प्लास्टिक के सूक्ष्म कण मिले हैं। शोधों से स्पष्ट है कि अधिकांश कण 25 माइक्रोमीटर से छोटे होते हैं तथा पॉलीस्टायरीन, पॉलीइथिलीन टेरेफ्थेलेट जैसे प्लास्टिक के बने होते हैं। इन कणों के स्ट्रैटोस्फीयर तक पहुँचने और वर्षा की बूंदों में सम्मिलित होने के प्रमाण मिले हैं, जिससे यह प्रदूषण अब मिट्टी, जल स्रोतों, फसलों और अन्ततः मानव शरीर तक पहुँचता है।

इन अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्षा का जल अब शुद्धता का साधन नहीं, बल्कि एक वैश्विक माइक्रोप्लास्टिक संकट का संवाहक बन गया है। जल सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए यह चुनौती गंभीर स्तर पर उत्पन्न हो चुकी है। इसका समय रहते समाधान और निगरानी आवश्यक है।

मानव शरीर पर माइक्रोप्लास्टिक के दुष्परिणाम

माइक्रोप्लास्टिक का स्वास्थ्य पर प्रभाव वैश्विक स्तर पर गंभीर चिंता का कारण बनता जा रहा है। वैज्ञानिक अध्ययनों से स्पष्ट है कि माइक्रोप्लास्टिक और नैनोप्लास्टिक मानव शरीर के लगभग सभी महत्वपूर्ण अंगों तक पहुँच चुके हैं।

गर्भावस्था और नवजात शिशु पर प्रभावः इतालवी शोधकर्ताओं द्वारा रमन माइक्रोस्पेक्ट्रोस्कोपी तकनीक से किए गए 2020 के महत्वपूर्ण अध्ययन में छह गर्भवती महिलाओं की अपरा (प्लेसेंटा) की जांच की गई, जिसमें चार अपराओं में कुल 12 माइक्रोप्लास्टिक कण (5–10 माइक्रोमीटर आकार) पाए गए। 2025 के टेक्सास चिल्ड्रेन अस्पताल के व्यापक अध्ययन में 175 अपराओं का विश्लेषण किया गया, जिसमें समय पूर्व जन्मे शिशुओं की अपरा में पूर्ण अवधि वाले शिशुओं की तुलना में 28% अधिक माइक्रो और नैनोप्लास्टिक सांद्रता पाई गई। यह विशेष रूप से चिंताजनक है क्योंकि समय पूर्व जन्म होने के बावजूद भी इनमें अधिक संचय था, जो इस बात का संकेत है कि माइक्रोप्लास्टिक स्वयं समय पूर्व प्रसव का कारण हो सकते हैं।

प्रजनन पर गंभीर प्रभावः 2025 में यूरोपीय प्रजनन और भ्रूण विज्ञान सोसायटी में प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार, 29 महिलाओं के कूपिक तरल (फॉलिक्युलर फ्लूइड) के 69% नमूनों और 22 पुरुषों के वीर्य के 55% नमूनों में माइक्रोप्लास्टिक पाए गए। सबसे अधिक पाया जाने वाला प्लास्टिक पॉलीटेट्राफ्लोरोएथिलीन (PTFE) था, जो नॉन–स्टिक कुकवेयर में उपयोग होता है। 2025 के एक अन्य अध्ययन में पॉलीइथिलीन और पीवीसी नैनोप्लास्टिक का उच्च स्तर निशेचन दर में कमी और शुक्राणु गुणवत्ता में गिरावट से जुड़ा पाया गया।

मस्तिष्क पर खतरनाक प्रभावः 2024–2025 के न्यू मैक्सिको विश्वविद्यालय के अभूतपूर्व अध्ययन में 52 मृत व्यक्तियों के मस्तिष्क ऊतकों में माइक्रोप्लास्टिक का विश्लेषण किया गया। परिणामों से पता चला कि मस्तिष्क ऊतक में माइक्रोप्लास्टिक की माध्य सांद्रता 2016 में 3,345 माइक्रोग्राम/ग्राम से बढ़कर 2024 में 4,917 माइक्रोग्राम/ग्राम हो गई। सबसे चिंताजनक तथ्य यह है कि डिमेंशिया पीड़ित रोगियों में यह सांद्रता 26,076 माइक्रोग्राम/ग्राम तक पहुँची, जो सामान्य व्यक्तियों से पांच गुना अधिक है।

प्रतिरक्षा तंत्र पर प्रभावः शोधों से स्पष्ट है कि माइक्रोप्लास्टिक प्रतिरक्षा तंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। ये कण न्यूट्रोफिल कोशिकाओं में 50–97% तक की मृत्यु दर का कारण बनते हैं और प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन स्पीसीज का उत्पादन बढ़ाकर ऑक्सीडेटिव तनाव उत्पन्न करते हैं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के सैन फ्रांसिस्को की 2024 की समीक्षा में 3,000 से अधिक अध्ययनों के आधार पर पुष्टि की गई कि वायुजनित माइक्रोप्लास्टिक फेफड़े और कोलन कैंसर, पुरुष और महिला बांझपन सहित अनेक गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़े हैं।

न्यूरोलॉजिकल प्रभावः 2025 के अध्ययनों से पता चला है कि नैनोप्लास्टिक रक्त–मस्तिष्क बाधा को पार कर न्यूरोइन्फ्लेमेशन, ऑक्सीडेटिव तनाव और अमाइलॉइड–बीटा संचय को बढ़ावा देते हैं। प्रयोगशाला अध्ययनों में चूहों में स्थानिक स्मृति हानि और हिप्पोकैम्पस में क्षति दर्ज की गई है। इस प्रकार, माइक्रोप्लास्टिक का मानव शरीर में संचय अब केवल पर्यावरणीय चिंता नहीं, बल्कि एक उभरता वैश्विक स्वास्थ्य आपातकाल है जिसके लिए तत्काल व्यापक अनुसंधान और नीतिगत हस्तक्षेप आवश्यक है।

दैनिक सेवन की मात्राः वर्ल्ड वाईड फंड फॉर नेचर, इंडिया (WWF–इंडिया) द्वारा कमीशन किए गए और ऑस्ट्रेलिया के न्यूकैसल विश्वविद्यालय द्वारा संचालित 2019 के अध्ययन के अनुसार, 50 से अधिक अध्ययनों के विश्लेषण से पता चला कि औसत व्यक्ति प्रति सप्ताह लगभग 5 ग्राम यानी एक क्रेडिट कार्ड के वजन के बराबर माइक्रोप्लास्टिक का सेवन करता है। इसका मतलब है कि प्रति सप्ताह लगभग 2,000 सूक्ष्म प्लास्टिक कण और वार्षिक 250 ग्राम प्लास्टिक का सेवन हो रहा है। शरीर में पहुँचने के बाद, अत्यंत सूक्ष्म नैनोप्लास्टिक (< 200 नैनोमीटर) कोशिका झिल्लियों को पार कर रक्तप्रवाह में घुल जाते हैं और विभिन्न अंगों में जमा हो सकते हैं।

प्लास्टिक युग की पर्यावरणीय कीमत

पिछले कुछ दशकों में प्लास्टिक ने आधुनिक जीवन में क्रांति ला दी है। लेकिन इस विकास की चमक के पीछे छिपा अदृश्य बोझ अब हमारे पारिस्थितिक तंत्र पर गहराई से असर डाल रहा है।

मृदा और कृषि पर प्रभाव

भूमि में जमा माइक्रोप्लास्टिक का कृषि पर प्रभाव चिंताजनक है। डी सूजा मचाडो द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार, माइक्रोप्लास्टिक मृदा की भौतिक संरचना और जल धारण क्षमता को प्रभावित करते हैं। छह प्रकार के माइक्रोप्लास्टिक (पॉलीएस्टर फाइबर, पॉलीएमाइड बीड्स आदि) के संपर्क में आने पर पौधों के बायोमास, जड़ विकास और मृदा सूक्ष्मजीवी गतिविधियों में भारी कमी आई, जिससे फसल उत्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। चीन के गुआंगडोंग प्रांत के कृषि क्षेत्रों में 2023 के अध्ययन में प्रति किलोग्राम मिट्टी में औसतन 22,675 माइक्रोप्लास्टिक कण पाए गए, जो वैश्विक औसत से कहीं अधिक है। भारत में टॉक्सिक्स लिंक के 2022 के अध्ययन में कर्नाटक और महाराष्ट्र के कृषि क्षेत्रों में प्लास्टिक मल्चिंग के कारण मिट्टी में सूक्ष्म प्लास्टिक कणों की व्यापक उपस्थिति दर्ज की गई।

केंचुओं और मृदा जीवों पर प्रभाव

2024–25 के व्यापक अध्ययन में पांच प्रकार के केंचुओं पर माइक्रोप्लास्टिक के प्रभाव का परीक्षण किया गया। परिणामों से पता चला कि माइक्रोप्लास्टिक के संपर्क में आने से केंचुओं का वजन घटता है, वृद्धि दर कम होती है और कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में कमी से उनकी चयापचय गतिविधि प्रभावित होती है। विशेष रूप से केंचुओं की ए. कैलीगिनोसा और ई. फेटिडा प्रजातियां सबसे अधिक प्रभावित हुईं तथा एल. टेरेस्ट्रिस अपेक्षाकृत अधिक प्रतिरोधी साबित हुई।

जल पारिस्थितिकी तंत्र में व्यवधान

प्लास्टिक प्रदूषण जल प्रवाह प्रणालियों को गंभीर रूप से बाधित करता है। संयुक्त राष्ट्र आपदा जोखिम न्यूनीकरण कार्यालय के अनुसार, प्लास्टिक कचरे से नाली और सीवरेज सिस्टम अवरुद्ध होने के कारण 200 मिलियन से अधिक लोग, मुख्यतः संवेदनशील क्षेत्रों में, गंभीर और बार–बार आने वाली बाढ़ के जोखिम का सामना करते हैं। प्लास्टिक, पारिस्थितिकी तंत्र के लचीलेपन को कम करता है और जलवायु परिवर्तन की अनुकूलन क्षमता को घटाता है। द ओशन क्लीनअप के अध्ययन के अनुसार, नदियां वैश्विक प्लास्टिक प्रदूषण का 80% महासागरों तक पहुंचाती हैं। समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में 700 से अधिक प्रजातियां प्लास्टिक प्रदूषण से प्रभावित हैं। प्लास्टिक उत्पादन से प्रति वर्ष लगभग 850 मिलियन मीट्रिक टन CO का उत्सर्जन होता है, जो जलवायु परिवर्तन को तेज करता है। विघटित होते प्लास्टिक से मीथेन और एथिलीन गैस निकलती है, जो ग्रीनहाउस प्रभाव बढ़ाती है। प्लास्टिक प्रदूषण के कारण आर्द्रभूमि और तटीय पारिस्थितिकी तंत्र की प्राकृतिक सेवाएं बाधित हो रही हैं, जिससे जैव विविधता में गिरावट और जलवायु प्रभावों की तीव्रता बढ़ रही है।

वायु प्रदूषण और स्वास्थ्य संकट

प्लास्टिक के जलाने से निकलने वाले धुएं में डायऑक्सिन, फ्यूरन, पॉली क्लोरिनेटेड बाइफिनाइल्स और PM2.5 कण होते हैं। ये रसायन कैंसर, हार्मोन विकार, प्रतिरक्षा तंत्र की क्षति और प्रजनन संबंधी समस्याओं का कारण बनते हैं। PM2.5 के दीर्घकालिक संपर्क से हृदय रोग का जोखिम प्रति 10 $\mu g/m^3$ वृद्धि पर 12–14% तक बढ़ जाता है। इंडोनेशिया जैसे देशों में जहां 34 मिलियन टन कचरे का आधा हिस्सा अनुचित तरीके से जलाया जाता है, वहां श्वसन रोग, हृदय रोग और कैंसर की दर में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है।

प्लास्टिक अब केवल सुविधा का साधन नहीं, बल्कि मृदा, जल, वायु और जैविक प्रणालियों के लिए एक व्यापक पारिस्थितिक जटिलता बन चुका है। यह कृषि उत्पादकता, जल संसाधन, वायु गुणवत्ता और मानव स्वास्थ्य पर बहुआयामी दबाव डाल रहा है। इस अदृश्य लेकिन व्यापक संकट से निपटने के लिए विज्ञान, नीति, उद्योग और समाज की सामूहिक कार्यवाही अनिवार्य है, ताकि भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सके।

प्लास्टिक पर हमारी अत्यधिक निर्भरता क्यों ?

प्लास्टिक पर हमारी निर्भरता आधुनिक औद्योगिक समाज की जटिलताओं, उपभोक्ता मानसिकता, व्यापारिक सुविधा और कमजोर पर्यावरणीय नीतियों का परिणाम है। इसकी शुरुआत 20वीं सदी के प्रारंभ में हुई, जब 1907 में पहला सिंथेटिक प्लास्टिक बनाया गया। वास्तविक विस्फोट द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1950 के दशक में हुआ, जब पेट्रोकेमिकल उद्योग के विस्तार के साथ वैश्विक प्लास्टिक उत्पादन 1950 में 1.5 मिलियन टन से बढ़कर 2015 तक 380 मिलियन टन तक पहुंच गया, यह 8.4% की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर है, जो उसी अवधि में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर से 2.5 गुना अधिक है। 1950–2015 के बीच कुल 7.8 अरब टन रेजिन और फाइबर का उत्पादन हुआ, जिसमें से आधा (3.9 अरब टन) केवल पिछले 13 वर्षों में बना। वर्तमान में चीन अकेले वैश्विक रेजिन उत्पादन का 28% और पॉलीप्रोपिलीन फाइबर का 68% हिस्सा बनाता है। बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक एक सीमित विकल्प के रूप में उभर रहे हैं, किन्तु उनकी लागत पारंपरिक प्लास्टिक से 2–3 गुना अधिक है। वैश्विक स्तर पर बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक की उत्पादन क्षमता केवल 4 मिलियन टन है, जो कुल प्लास्टिक उत्पादन के 1% से भी कम है।

भारत में विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व (EPR) नीति का क्रियान्वयन

भारत सरकार ने 2022 से सिंगल–यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध और EPR को लागू किया है। इसके तहत प्लास्टिक उत्पादकों, आयातकों और ब्रांड मालिकों को अपने द्वारा उत्पादित या बेचे गए प्लास्टिक कचरे को इकट्ठा करना, पुनः उपयोग करना, पुनर्चक्रण कराना और सुरक्षित निपटान सुनिश्चित करना अनिवार्य किया गया। 2024 के संशोधन में डिजिटल ईपीआर सर्टिफिकेट, पुनर्चक्रण प्लास्टिक का अनिवार्य उपयोग और कठोर जुर्माने शामिल किए गए हैं। प्लास्टिक बैग की न्यूनतम मोटाई 50 माइक्रोन से बढ़ाकर 75 माइक्रोन कर दी गई है। अगस्त 2024 तक 35,000 से अधिक उत्पादक, आयातक और ब्रांड मालिक EPR पोर्टल पर पंजीकृत हो चुके हैं। हालांकि, विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र की 2024 की रिपोर्ट के अनुसार, अधिकांश अनुपालन का भार ब्रांड मालिकों पर है और छोटे उत्पादकों के पास पूर्ण क्रियान्वयन की क्षमता सीमित है। बड़ी कंपनियाँ अक्सर न्यूनतम मानकों को पूरा करने तक ही सीमित रहती हैं, जबकि छोटे उत्पादकों के पास नियमों को पूरी तरह लागू करने की क्षमता नहीं है। अतः दीर्घकालिक और स्थायी समाधान के लिए केवल प्रतिबंध या न्यूनतम अनुपालन पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि इसमें उद्योग, उपभोक्ता, स्थानीय निकाय और सरकार सभी का संयुक्त और दीर्घकालिक सहयोग आवश्यक है। विशेषज्ञों का मानना है कि जब तक स्थानीय निकायों की प्लास्टिक पुनर्चक्रण क्षमता, अवसंरचना और निगरानी तंत्र मजबूत नहीं होंगे, तब तक EPR के अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आएंगे।

दीर्घकालिक प्रभाव और चुनौती

यदि वर्तमान उत्पादन प्रवृत्ति जारी रही तो 2050 तक मानवता 26,000 मिलियन टन रेजिन, 6,000 मिलियन टन सिंथेटिक फाइबर और 2,000 मिलियन टन एडिटिव्स का उत्पादन कर चुकी होगी। वर्तमान अपशिष्ट प्रबंधन प्रवृत्तियों के आधार पर 2050 तक 9,000 मिलियन टन प्लास्टिक का पुनर्चक्रण, 12,000 मिलियन टन का दहन और 12,000 मिलियन टन का लैंडफिल या पर्यावरण में निपटान होगा।

प्लास्टिक की सफलता इसकी सस्ती उत्पादन लागत, बहुउपयोगिता और पेट्रोकेमिकल उद्योग की मजबूत आपूर्ति श्रृंखला में निहित है। भारत में EPR नीति एक सकारात्मक कदम है, लेकिन इसका प्रभावी क्रियान्वयन अभी भी चुनौतीपूर्ण है। समाधान केवल नीतिगत प्रतिबंध में नहीं, बल्कि बायोप्लास्टिक की लागत कम करने, पुनर्चक्रण अवसंरचना के विकास और उपभोक्ता व्यवहार परिवर्तन में निहित है। साथ ही कहीं अधिक सख्त प्रवर्तन, तकनीकी नवाचार और बहु–हितधारक सहयोग की आवश्यकता है। तब तक प्लास्टिक पर हमारी निर्भरता आर्थिक सुविधा और पर्यावरणीय नुकसान के बीच एक जटिल द्वंद्व बना रहेगा।

प्राचीन बनाम आधुनिक जल संरक्षण संरचनाएं

प्राचीन भारत में जल संरक्षण केवल आवश्यकता नहीं, बल्कि संस्कृति और जीवनशैली का हिस्सा था। सिंधु घाटी सभ्यता (2500–1500 ईसा पूर्व) में निर्मित पत्थर के कुएं, टेराकोटा नालियाँ, सार्वजनिक स्नानागार और अपशिष्ट प्रबंधन की विकसित प्रणालियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि जल के साथ हमारा रिश्ता गहरा, वैज्ञानिक और सामुदायिक था। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और धोलावीरा जैसे शहरों में विश्व की प्रथम शहरी स्वच्छता प्रणाली थी। मोहनजोदड़ो में 700 से अधिक कुएं थे और अधिकांश घरों में निजी कुएं, स्नान प्लेटफॉर्म और समर्पित शौचालय व्यवस्था थी। धोलावीरा में 16 विशाल जलाशय थे, जो शहर के कुल क्षेत्रफल का 10% हिस्सा थे। राजस्थान की चाँद बावड़ी, दिल्ली की बावलियाँ और दक्षिण भारत के टांका और मंदिर टैंक जैसी संरचनाएं सदियों तक स्वच्छ जल संग्रहण में सक्षम रहीं क्योंकि इनका निर्माण पत्थर, मिट्टी और चूने जैसी जैविक रूप से अपघटनीय और रासायनिक रूप से निष्क्रिय सामग्रियों से होता था। पारंपरिक चूना मोर्टार में एंटी–बैक्टीरियल गुण होते हैं और नमी नियंत्रण की प्राकृतिक क्षमता होती है।

इसके विपरीत आधुनिक जल भंडारण और वितरण प्रणालियाँ प्लास्टिक आधारित हो गई हैं। पीवीसी पाइपों से माइक्रोप्लास्टिक रिसाव की पुष्टि एक अमेरिकन यूनिवर्सिटी की प्रयोगशाला अध्ययन में हुई है। स्थिर जल स्थितियों में पीवीसी पाइपों से भारी मात्रा में माइक्रोप्लास्टिक कण निकलते हैं, जो रात के समय (जब पानी का प्रवाह बंद रहता है) अधिक संचित होते हैं। C–Cl और C–H बॉन्ड्स की स्पेक्ट्रोस्कोपी पुष्टि करती है कि ये कण पीवीसी से ही निकले हैं। नगरपालिका जल प्रणालियों में प्लास्टिक पाइप और फिटिंग्स के विघटन से माइक्रोप्लास्टिक का रिसाव बढ़ता जा रहा है। पुरानी और जर्जर पाइपलाइनें इस प्रदूषण को और तीव्र करती हैं।

जहाँ प्राचीन संरचनाएं दीर्घकालिक उपयोग, सामुदायिक देखभाल और पर्यावरणीय अनुकूलता पर आधारित थीं, वहीं आधुनिक संरचनाएं अल्पकालिक और कृत्रिम सामग्रियों पर निर्भर हैं, जो पारिस्थितिकी और स्वास्थ्य दोनों पर नकारात्मक असर डाल रही हैं। भविष्य की राह पारंपरिक सामग्रियों और आधुनिक तकनीक के संकर दृष्टिकोण में निहित है, जहां चूने की लिपाई, पत्थर आधारित टंकियां और जैविक फिल्टरेशन सिस्टम प्लास्टिक के टिकाऊ विकल्प बन सकते हैं।

प्लास्टिक उद्योग और जीवाश्म ईंधन निर्भरता

99% से अधिक प्लास्टिक जीवाश्म ईंधन से प्राप्त रसायनों से निर्मित होता है, जिससे तेल एवं गैस कंपनियों के लिए यह भविष्य की एक महत्वपूर्ण रणनीति बन गई है। 2018 में पेट्रोकेमिकल और प्लास्टिक उत्पादन में तेल की वैश्विक मांग का 14% हिस्सा था, जो OPEC के अनुसार 2050 तक बढ़कर 16% हो जाएगा। अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (2021) के अनुसार, पेट्रोकेमिकल्स 2050 तक कच्चे तेल की मांग का 50% से अधिक हिस्सा अभिग्रहित कर लेंगे।

प्लेनेट ट्रैकर के विश्लेषण के अनुसार, वैश्विक प्लास्टिक उत्पादन 2060 तक तिगुना हो सकता है, जिससे इसके जीवनकाल उत्सर्जन दोगुने होकर वैश्विक उत्सर्जन का 4.5% हिस्सा बन जाएंगे। अमेरिका का प्लास्टिक उत्पादन अवसंरचना में निवेश तथा सऊदी अरब की प्लास्टिक सब्सिडी स्पष्ट करती है कि जीवाश्म ईंधन उद्योग अपनी भविष्य की वित्तीय स्थिरता के लिए प्लास्टिक उत्पादन पर तेजी से निर्भर हो रहा है।

जल कोई साधारण संसाधन नहीं, बल्कि हमारी साझा विरासत और जिम्मेदारी है। जिसे बचाना, समझदारी से प्रयोग करना और अगली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है। भारत की प्राचीन जल संरचनाएं केवल तकनीकी समाधान नहीं थीं, बल्कि संस्कृति, विज्ञान और पर्यावरणीय संतुलन की अभिव्यक्ति थीं। अतः आज आवश्यकता है कि हम इस पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक संदर्भ में पुनर्जीवित करें और आने वाली पीढ़ियों के लिए जल की सुरक्षा सुनिश्चित करें।

अंतर्राष्ट्रीय मानकीकरण के प्रयास

यूरोपीय संघ ने अप्रैल 2024 में पेयजल में माइक्रोप्लास्टिक की निगरानी हेतु एक मानकीकृत कार्यप्रणाली विकसित की है। इसके अनुसार इस प्रणाली में कम से कम 1,000 लीटर जल नमूने की आवश्यकता होती है और दो आकार श्रेणियों (100 और 20 माइक्रोन फिल्टर) में विश्लेषण करना होता है। इन्फ्रारेड या रमन माइक्रोस्कोपी द्वारा पॉलिमर की पहचान की जाती है। यूरोपीय आयोग ने 2025 की शुरुआत में नए शहरी अपशिष्ट, जल निर्देशक में माइक्रोप्लास्टिक आवश्यकताओं को शामिल किया है। हालांकि, अप्रैल 2025 तक कोई बाध्यकारी परीक्षण आवश्यकता नहीं है, लेकिन आने वाले वर्षों में इसकी अपेक्षा है। भारत में निगरानी की कमी भारत में अभी तक पेयजल में माइक्रोप्लास्टिक की निगरानी के लिए कोई मानकीकृत प्रणाली नहीं है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 2019 में 194 सदस्य देशों से माइक्रोप्लास्टिक की निगरानी और जोखिम मूल्यांकन सक्रिय करने की सिफारिश की थी, लेकिन अधिकांश विकासशील देश अभी भी इस दिशा में पीछे हैं।

तकनीकी समाधान और भविष्य की दिशा

नवीन तकनीकों में अल्ट्राफिल्ट्रेशन, नैनोफाइबर झिल्लियाँ, मैग्नेटिक कोएगुलेशन और मेम्ब्रेन बायो–रिएक्टर शामिल हैं। इनमें से मेम्ब्रेन बायो–रिएक्टर 99.9% दक्षता दिखाते हैं। साथ ही, माइक्रोप्लास्टिक के प्रवाह और संचलन को समझने के लिए जलविज्ञानीय निदर्शों का अद्यतन करना जरूरी है, ताकि नीतियाँ और रणनीतियाँ ठोस आंकड़ों पर आधारित हों।

भविष्य में यूरोपीय संघ की तरह भारत में भी माइक्रोप्लास्टिक को 'वॉच लिस्ट' में शामिल करना, मानकीकृत परीक्षण प्रणाली विकसित करना और पेयजल मानकों में इसकी स्वीकार्य सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। तभी सतत विकास लक्ष्य–6 (सभी के लिए सुरक्षित और सुलभ जल) की वास्तविक पूर्ति संभव हो सकेगी और जल सुरक्षा का अर्थ केवल उपलब्धता नहीं, बल्कि गुणवत्ता भी बन सकेगा। इस संकट से निपटने के लिए सभी स्तरों पर नीति, तकनीक, अनुसंधान और सामाजिक जागरूकता/भागीदारी के एकीकृत प्रयास आवश्यक हैं।

सतत विकास लक्ष्य–6 (स्वच्छ जल और स्वच्छता) और माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण

जल केवल जीवनदायी तरल नहीं, बल्कि विकास की दिशा का संकेतक है। संयुक्त राष्ट्र का सतत विकास लक्ष्य–6 (SDG–6) वर्ष 2030 तक सभी को सुरक्षित और स्वच्छ जल एवं स्वच्छता उपलब्ध कराने का संकल्प रखता है। यह लक्ष्य न केवल पानी की उपलब्धता, बल्कि उसकी गुणवत्ता, पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक न्याय से भी जुड़ा हुआ है। वर्तमान में माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण इस लक्ष्य की जड़ें कमजोर कर रहा है।

भारत के जल जीवन मिशन (JJM) ने अगस्त 2025 तक ग्रामीण भारत के 15.69 करोड़ से अधिक परिवारों को नल से जल पहुंचाया है और ''हर घर जल'' का लक्ष्य हासिल किया है, वहीं जल की गुणवत्ता विशेष रूप से माइक्रोप्लास्टिक व 'नैनोप्लास्टिक' प्रदूषण पर निगरानी का अभाव एक बड़ी चुनौती बना हुआ है। पेयजल के लिए भारतीय मानक ब्यूरो का विनिर्देश 'IS 10500:2012' सिर्फ पारंपरिक भौतिक, रासायनिक व जैविक मानकों को आच्छादित करता है। क्षेत्रीय परीक्षण किट्स केवल क्लोरीन अवशेष, फ्लोराइड, आयरन, नाइट्रेट, आर्सेनिक आदि 11–12 मानकों को परखने के लिए अभिकल्पित की गई हैं, जिनमें माइक्रोप्लास्टिक की जाँच शामिल नहीं है। यह खतरा इतना सूक्ष्म व अदृश्य है कि जब तक नीति–निर्माण और शासन इन राष्ट्रीय जल नीतियों को ग्राम पंचायत स्तर तक शामिल नहीं करेंगे, तब तक यह संकट पानी को 'प्राकृतिक संसाधन' से 'प्रदूषित वस्तु' में बदल सकता है। अभी कोई भी राष्ट्रीय या राज्य–स्तरीय जल नीति माइक्रोप्लास्टिक के लिए अनुमेय सीमा निर्धारित नहीं करती है।

नियंत्रित समाधान के लिए कुछ व्यवहारिक नवाचार आवश्यक हैं:– जैसे प्रत्येक गांव में उन्नत माइक्रोप्लास्टिक टेस्टिंग किट एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराना, या डैफ्निया और शैवाल जैसे बायोइंडिकेटर का प्रयोग। राज्य–स्तरीय जल सुरक्षा सूचकांकों में माइक्रोप्लास्टिक को नए पैरामीटर के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं द्वारा नदियों व झीलों में नियमित माइक्रोप्लास्टिक आंकलन/अवलोकन अनिवार्य करना चाहिए। जल भंडार की सेहत की नियमित निगरानी, पुनर्भरण क्षेत्रों की सुरक्षा और सूक्ष्म प्रदूषकों की पहचान को राष्ट्रीय जल नीति का अभिन्न हिस्सा बनाया जाना चाहिए। आम नागरिकों को यह समझाने के लिए कि पानी की शुद्धता केवल स्वाद और पारदर्शिता पर निर्भर नहीं करती, व्यापक जागरूकता अभियानों की आवश्यकता है। नागरिकों के लिए डिजिटल डैशबोर्ड विकसित किए जाएं, तो जल स्रोत की गुणवत्ता संबंधी सूचनाएं पारदर्शी तरीके से साझा होंगी और सामुदायिक सहभागिता भी बढ़ेगी। सरकारी तंत्र में मंत्रालयों के बीच समन्वय को संस्थागत रूप दिया जाए। अंततः, SDG–6 को केवल ''नल से जल'' के लक्ष्य तक सीमित न रखकर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जल वास्तव में स्वास्थ्यवर्धक/जीवन–संरक्षक हो, न कि प्लास्टिक–संतृप्त प्रदूषण का वाहक। जल सुरक्षा का अर्थ अब केवल मात्रा नहीं, बल्कि उसमें छिपे दीर्घकालिक खतरों की पहचान और समाधान भी है। इस दिशा में शोध और नीति प्रयासों को मजबूती देकर ही भारत SDG–6 की वास्तविक परिकल्पना (सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण जल) को साकार कर सकेगा।

समाधान की ओर ठोस पहल

प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने का समाधान नतीजों को संभालने में नहीं, बल्कि मूल स्रोतों को नियंत्रित करने में है। हमें उत्पादन, वितरण और उपभोग की उस व्यवस्था को नए सिरे से परिभाषित करना होगा, जो अब तक सुविधा और लागत को प्राथमिकता देते हुए पर्यावरणीय और सामाजिक दुष्प्रभावों को नजरअंदाज करती रही है। उत्पादन स्तर पर प्राकृतिक, जैव–अपघटनीय सामग्रियों को प्राथमिकता देना आवश्यक है। बांस, जूट, केले के रेशे और कपास जैसी सामग्रियाँ स्थानीय रूप से उपलब्ध, सस्ती और पूरी तरह विघटित होती हैं, जूट के बैग एवं बांस के टूथब्रश ग्रामीण आजीविका को भी बढ़ावा देते हैं। मक्का–आधारित पॉलीलैक्टिक एसिड और गन्ने–आधारित पॉलीहाइड्रॉक्सीएल्केनोएट्स जैसी बायोप्लास्टिक्स की वैश्विक उत्पादन क्षमता वर्तमान में 4 मिलियन टन है, जो कुल प्लास्टिक उत्पादन का 1% से कम है, तथा इनमें लागत पारंपरिक प्लास्टिक से 2–3 गुना अधिक है। तकनीकी नवाचार से जल शोधन में भी क्रांति संभव है। पॉलीविनाइलिडीन फ्लोराइड नैनोफाइबर फिल्टर 99% तक माइक्रोप्लास्टिक हटाने में सक्षम हैं। इलेक्ट्रोकोएग्युलेशन एवं फेरोफ्लुइड तकनीक छोटे कणों को अवशोषित करती है, जबकि चीन में विकसित ''स्क्विड–बोन'' स्पंज ने लैब में 99.9% नैनोप्लास्टिक अवशोषित करने का प्रदर्शन किया है। नीति स्तर पर 'विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व' नीतियों को कठोर अनुपालन तथा डिजिटल ट्रैकिंग के साथ कार्यान्वित करना चाहिए। स्थानीय निकायों को अनुदान और वित्तीय सहायता देकर पुनर्चक्रण इकाइयाँ स्थापित करवानी चाहिए। शैक्षिक सुधार भी अनिवार्य है। स्कूलों और कॉलेजों में प्लास्टिक प्रदूषण और हरित विकल्प को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। 'शून्य प्लास्टिक चुनौती' जैसे कार्यक्रम, रिफिल स्टोर्स और 'जीरो वेस्ट' समुदाय जागरूकता बढ़ाकर व्यक्तिगत परिवर्तन को प्रेरित करते हैं। कर्नाटक मिल्क फेडरेशन द्वारा नंदिनी दूध पैकेट के लिए 100% बायोडिग्रेडेबल विकल्प अपनाना इसका सफल उदाहरण है। प्लास्टिक पर हमारी निर्भरता केवल एक लत नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना, आर्थिक नीति और तकनीकी विकास के त्रिकोण से पैदा हुई जटिलता है। प्लास्टिक मुक्त समाज तभी

संभव है जब व्यक्ति, उद्योग, समाज और सरकार मिलकर जिम्मेदारी निभाएँ, नवाचार और परंपरा को संगठित रूप से लागू करें। यह बहुआयामी साझेदारी ही ''सुविधा'' से आगे बढ़कर ''जिम्मेदारी'' को जीवन का आधार बनाएगी।

प्लास्टिक के प्राकृतिक समाधानकर्ता

प्लास्टिक धरती के लिए वरदान और अभिशाप दोनों साबित हुआ है। प्लास्टिक संकट से निपटने में प्रकृति स्वयं समाधान प्रस्तुत कर रही है। जापान के आइडियोनेला सकाइएन्सिस जीवाणु से प्राप्त PETase और MHETase एंजाइमों ने पॉलीएथिलीन टेरेफ्थेलेट को कुछ ही दिनों में मूल रासायनिक घटकों में तोड़ने का प्रदर्शन किया, जबकि पारंपरिक रूप से इसमें सैकड़ों वर्ष लगते हैं। PETase प्लास्टिक की सतह तोड़ता है और MHETase उसे मूल मोनोमर्स में विभाजित करता है। एक फ्रेंच कंपनी वाणिज्यिक स्तर पर इस चिमेरिक एंजाइम का परीक्षण कर रही है। इसी प्रकार, संशोधित एंजाइम जैसे क्यूटिनेज और एलसीसी (लीफ–ब्रांच कम्पोस्ट क्यूटिनेज) भी पॉलीएथिलीन टेरेफ्थेलेट अपघटन में प्रभावी पाए गए हैं। कीटों में भी प्लास्टिक अपघटन की क्षमता मिली है। वैक्स वर्म (मोम कीट) के पाचन तंत्र में पाया गया एंजाइम पीईटी को पचा सकता है। भोजन कृमि (टेनेब्रियो मोलिटर) और सुपरवर्म (जोफोबास मोरियो) जैसे कुक्कुटों ने पीईटी और स्टायरोफोम विघटन दिखाया है।

इस क्षेत्र में फफूंदी की भी क्षमता सामने आई है। वर्षा वनों से खोजी गई दुर्लभ फफूंद पेस्टालोटिओप्सिस माइक्रोस्पोरा ऑक्सीजनविहीन परिस्थितियों में पीईटी तोड़ सकती है जिससे यह लैंडफिल स्थलों के लिए अत्यंत उपयोगी साबित हो सकती है। जबकि ऐस्परजिलस ट्यूबिंगेन्सिस ने पेट्रोलियम–आधारित प्लास्टिक नियंत्रण के अन्तर्गत पीईटी अपघटन में सक्रिय भूमिका निभाई है। जर्मनी के मीठे पानी के आवासों से प्राप्त कवकों ने पॉलीयूरेथेन अपघटन दिखाया, जिससे अपशिष्ट जल संयंत्रों में जैव–उपचार की संभावना बढ़ी है। हालाँकि ये पॉलीइथाइलीन और टायर माइक्रोप्लास्टिक जैसे कठोर प्लास्टिक पर कम प्रभावी हैं, फिर भी इन्हें मौजूदा पुनर्चक्रण प्रणालियों के पूरक उपकरण के रूप में देखा जा रहा है।

अब तक विश्वभर में 400 से अधिक प्लास्टिक–अपघटनकारी जीवाणु और कवक प्रजातियाँ पहचानी जा चुकी हैं, जिन पर क्रिस्पर और जीन–संपादन तकनीकों से दक्षता बढ़ाने का शोध चल रहा है। प्रारंभिक परिणाम उत्साहजनक हैं, लेकिन इनके पारिस्थितिक प्रभाव और जैव सुरक्षा का व्यापक मूल्यांकन अभी अनिवार्य है। कुछ वैज्ञानिक ''स्व–पाचक प्लास्टिक'' जैसी अवधारणाओं पर भी काम कर रहे हैं, जिनमें जीवाणु अंतर्निहित होंगे और वे स्वयं बायोडिग्रेड हो जाएंगे। प्राकृतिक समाधान 'जैव–आधारित तथा नीति–समर्थित' क्रियान्वयन के माध्यम से प्लास्टिक संकट के लिए किफायती, सतत और हरित विकल्प प्रदान कर सकते हैं, बशर्ते वैश्विक स्तर पर उत्पादन और खपत में नीतिगत बदलाव भी समन्वित हों। जिससे जैविक नवाचार और सशक्त नीतियाँ मिलकर प्लास्टिक प्रदूषण को केवल नियंत्रित ही नहीं बल्कि क्रमशः समाप्त करने की दिशा में भी ले जा सकती हैं।

माइक्रोप्लास्टिक से बचाव और उपचार की समग्र रणनीति

माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण अब केवल चेतावनी की समस्या नहीं, बल्कि मानव स्वास्थ्य, पारिस्थितिकी और खाद्य सुरक्षा के सामने दीर्घकालिक संकट बन चुका है। यह प्रदूषण जल, वायु, मृदा और खाद्य श्रृंखला तक फैला है, जिससे मिट्टी के सूक्ष्मजीवों से लेकर मस्तिष्क ऊतकों तक विषाक्त प्रभाव स्थापित हो चुके हैं। समाधान बहुआयामी होने चाहिए, जिसमें वैज्ञानिक शोध, तकनीकी नवाचार, सशक्त नीतियाँ और नागरिक सहभागिता शामिल हों।

एक समग्र रणनीति के चार स्तंभ होने चाहिए

- **स्रोत नियंत्रणः** प्लास्टिक उत्पादन घटाकर सर्कुलर इकोनॉमी को अपनाना, सिंगल–यूज प्लास्टिक पर रोक एवं जैव–अपघटनीय विकल्पों को प्राथमिकता देनाः जैसे बायोप्लास्टिक की मौजूदा उत्पादन क्षमता बढ़ाना।
- **जैविक उपचारः** प्रकृति–आधारित समाधान जैसे PETase/MHETase एंजाइम, वैक्स वर्म और पेस्टालोटिओप्सिस माइक्रोस्पोरा जैसे जीवाणुओं एवं कवकों के उपयोग को प्रोत्साहित करना।
- **तकनीकी नवाचारः** नैनोफिल्ट्रेशन, मैग्नेटिक एडसॉर्बेंट्स, अल्ट्राफिल्ट्रेशन और मेम्ब्रेन–बायो–रिएक्टर तकनीकों का व्यापक प्रयोग, जो 94–99.9% माइक्रोप्लास्टिक हटाने में सक्षम हैं।
- **सशक्त नीति–विनियमनः** 'विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व' को कठोरता से लागू करना, मानकीकृत माइक्रोप्लास्टिक सीमाएं तय करना, अनुसंधान और निगरानी में सतत निवेश सुनिश्चित करना–जैसी यूरोपीय मानक विधियाँ और भारत में EPR पोर्टल का प्रभावी क्रियान्वयन।

उपसंहार

व्यवहार परिवर्तन और बहु–स्तरीय समन्वय के बिना माइक्रोप्लास्टिक संकट पर काबू पाना असंभव है। देश के नागरिकों को सिंगल–यूज प्लास्टिक त्यागकर पुनःप्रयोग योग्य विकल्पों को अपनाना चाहिए, साथ ही स्कूलों में पर्यावरण–अनुकूल व्यवहार की शिक्षा दी जानी चाहिए। उद्योगों को टिकाऊ पैकेजिंग और हरित निर्माण तकनीकों पर ध्यान केंद्रित करना होगा, जिससे उत्पादन चक्र में ही प्लास्टिक उत्सर्जन कम हो। सरकारों को कड़े नियामक और प्रोत्साहन तंत्र लागू करने चाहिएः जैसे ईपीआर के तहत लक्ष्य निर्धारण, मानकीकृत माइक्रोप्लास्टिक सीमाएं और डिजिटल निगरानी प्लेटफॉर्म। शोध संस्थानों को उन्नत निगरानी उपकरण, उपचार विधियाँ और स्वास्थ्य प्रभावों का दीर्घकालिक अध्ययन जारी रखना चाहिए, ताकि नीति और विज्ञान के बीच के अंतर को कम किया जा सके। जब विज्ञान, नीति, उद्योग और समाज सभी एक साथ काम करेंगे, तभी यह अदृश्य संकट नियंत्रित हो सकता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वच्छ, सुरक्षित तथा पर्यावरण–पूरक भविष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है।

.